International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(1): 38-40

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(1): 38-40
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-11-2017
Accepted: 13-12-2017

डॉ. कमलेश कमल
पूर्व गवेषक, संस्कृत–विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

Correspondence
डॉ. कमलेश कमल
पूर्व गवेषक, संस्कृत–विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

आयुर्वेदशास्त्र की वेदमूलकता

डॉ. कमलेश कमल

प्रस्तावना

जगत् की सकल मानव जाति को त्रिविध तापों से पीड़ित अनेकों शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त तथा नाना बाधाओं के कारण उनके इह लोक तथा परलोक के हित साधन में निरन्तर व्यवधान डालने वाले कष्टों को देख कर प्राचीन काल में तपस्वी त्रिकालदर्शी विद्वान् एवं महर्षियों ने अत्यन्त करुणा वश होकर इन कष्टों के निवारण हेतु समग्र जीवन दर्शन के रूप में जिस आरोग्य शास्त्र का प्रतिपादन किया, वही अमृत तत्त्व आयुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध है। इसे पूर्णरूप से यदि मानव धर्म कहें तो अनुचित नहीं होगा।

आयुर्वेद में केवल रोगों के कारण एवं उनकी चिकित्सा मात्र का ही वर्णन नही है, अपितु धर्म के समस्त सिद्धान्तों का तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि तथा इनके कारण होने वाली शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों का तथा उनके निवारणार्थ सत्य, अहिंसा आदि धर्म के सभी अंगों का भी विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। अतः इस शास्त्र के ज्ञान से मानव अपनी समस्त व्याधियों से मुक्त होकर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु को प्राप्त करते हुए अपने दोनों लोकों का कल्याण एवं चतुर्विध पुरुषार्थ का सम्पादन कर सकता है।

आयुर्वेदशास्त्र की वेदमूलकता को जानने से पूर्व सर्वप्रथम यह ज्ञात करना आवश्यक होता है कि आयुर्वेद का अर्थ क्या है?– वस्तुतः 'आयुर्वेद' शब्द 'आयु' तथा 'वेद' इन दोनों शब्दों के मेल से बना है। जिसका अर्थ होता है–

1. 'एति– गच्छति इति आयुः' अर्थात् जो निरन्तर गतिमान रहती है, उसे आयु कहते हैं।[1]
2. 'आयुर्जीवितकालः' अर्थात् जीवितकाल को आयु कहते हैं।[2]
3. 'चैतन्यानुवर्तनमायुः' अर्थात् जन्म से लेकर चेतना के बने रहने तक के काल को आयु कहते हैं।[3]

वेद से तात्पर्य है– ज्ञान। अतः आयुर्वेद का सामान्य अर्थ हुआ– जीवन का विज्ञान। महर्षि चरक ने आयुर्वेद तक परिभाषा इस प्रकार दी है–[4]

'हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।'

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें हितायु, अहितायु, दुःखायु एवं सुखायु– इन चतुर्विध आयु के लिए क्या हित है? क्या अहित है? आयु का मान क्या है? तथा इसका स्वरूप क्या है? आदि का वर्णन किया गया है।

यह सर्वविदित ही है कि चारों वेद ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं तथा प्रचीनतम हैं। आयुर्वेद के आद्यस्रोत ये ही हैं। आयुर्वेद के विषयवस्तु चतुर्वेद में ही प्राप्त होते हैं परन्तु, सर्वाधिक समानता अथर्ववेद से होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग[5] एवं वाग्भट ने अथर्ववेद का उपवेद कहा है।[6] आचार्य चरक ने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेद से बताई है एवं पुण्यतम वेद कहा है।[7] ऋग्वेद प्राचीनतम होने के कारण प्राचीनता की दृष्टि से चरणव्यूह में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है। महाभारत में भी आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है।[8]

चरकादि संहिता ग्रन्थों में आयुर्वेद के अष्टांग विभागानुसार दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु इसके बहुत पूर्व वेदों में तीन प्रकार के कष्टों के उपचार के लिए तीन ही प्रकार के उपाय किये जाते थे– आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। अष्टांग आयुर्वेद का नाम सर्वप्रथम किसने दिया? यह कहना कठिन है। पूर्व काल में अष्टाङ्ग आयुर्वेद के पृथक्–पृथक् अंग के विशेषज्ञों की अधिकता थी। जैसे– महर्षि कश्यप, कौमार भृत्य और अगदतन्त्र के विशिष्ट आचार्य थे।

इसी प्रकार शल्य तन्त्र के भासुकि,कायचिकित्सा के भरद्वाज तथा गार्ग्य, गालव, जनक, निमि आदि शालाक्य–तन्त्र के ज्ञाता थे। ऋक्, यजु तथा सामवेद के अतिरिक्त अथर्ववेद में अष्टांग आयुर्वेद की सामग्री अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। सुश्रुतसंहिता में आयुर्वेद के आठ अंग कहे गये हैं– काय, शल्य, शालाक्य, कौमार–भृत्य, भूत–विद्या, अगद–तन्त्र, रासायन तथा वाजीकरण। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. काय–चिकित्सा– ज्वर, अपस्मार, कुष्ठादि रोगों को दूर करने के उपाय को काय–चिकित्सा कहते हैं।
2. शल्य– अनेक प्रकार के तृण, प्रस्तर, अस्थि आदि, दूषित घाव, अन्तःशल्य, गर्भ शल्य आदि के निष्कासन के लिए यन्त्र–शास्त्र, क्षार तथा अग्नि के प्रयोग एवं व्रण के विनिश्चय के लिए जो कर्म किए जाते हैं वे शल्य कर्म कहलाते हैं।
3. शालाक्य– सिर, नेत्र, कान, नाक आदि में होने वाले रोगों की शान्ति के लिए तथा नेत्ररोग में शलाका द्वारा किए जाने वाले कर्म को 'शालाक्य' कहते हैं।
4. कौमारभृत्य– बाककोण के भरण पोषण धात्री की परीक्षादि का विधान जिसमें वर्णित हो उसे 'कौमारभृत्य' नाम से कहा गया है।
5. भूत–विद्या– देव गन्धर्व आदि के आवेश को शान्त करने के लिए किए जाने वाले उपाय को 'भूत विद्या' कहते हैं।
6. अगद–तन्त्र– सर्प बिच्छू आदि के दंश से उत्पन्न विष तथा अन्य विषों की शान्ति हेतु वाले उपाय जिसमें ये सभी कहे गए हों वह अगद–तन्त्र है।
7. रसायन– वयःस्थापन, आयुष्य, बल तथा ओज की वृद्धि के लिए तथा रोगों को दूर करने हेतु जिसमें उपाय बताए हों वह रसायन है।
8. वाजीकरण– क्षीण वीर्यदोष को दूर करने, शुक्र संशोधन, वृद्धावस्था दूर करने, अश्व के समान पौरुष शक्ति उत्पन्न करने का वर्णन जिसमें बताया हो, वह वाजीकरण है।

अष्टांग आयुर्वेद की चर्चा अथर्ववेद में प्रचुर मात्रा प्राप्त होती है। इस दृष्टि से अथर्ववेद में इसके प्रत्येक अंगों का अवलोकन इस प्रकार किया जा सकता है–

1. काय–चिकित्सा– आयुर्वेद के अष्टांगों में काय–चिकित्सा का वर्णन अथर्ववेद में अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्र में स्थान–स्थान पर औषधि के रूप में तथा उपचार के रूप में देखे जाते हैं। अथर्ववेद में प्रायः ज्ञात और अज्ञात तथा छोटी बड़ी सौ व्याधियों का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के नवें काण्ड के आठवें सूक्त में व्याधियों के नामकरण की एक सूची प्राप्त होती है, जिसके प्रथम चार मन्त्रों में सिर के रोगों का वर्णन है। पाँचवें से नवें तक के मन्त्रों में प्रचलित व्याधियों का वर्णन किया गया है। हृदय तथा उदर की व्याधियों का वर्णन दसवें से चौदहवें मन्त्रों में स्पट वर्णित है। पन्द्रहवें से सत्रहवें तक के मन्त्रों में पार्श्वास्थि तथा गुदास्थि का वर्णन है। अठारहवें से इक्कीसवें तक के मन्त्रों तें विशल्यक, विद्रधि आदि रोगों के नाम के साथ पैर जानु एवं श्रोणि का वर्णन प्राप्त होता है। अथर्ववेद में कुछ ऐसी व्याधियों का वर्णन तथा चिकित्सा भी मिलती है, जो निरोग होने में कालापेक्षी है तथा कुछ ऐसी व्याधियों का उल्लेख प्राप्त होता है जो अल्प कालापेक्षी तथा अस्पष्ट है। अथर्ववेदीय साहित्य में व्याधियों के वर्गीकरण या कायचिकित्सात्मक निदानादि दृ ष्टिकोण से विभाग नहीं देखे जाते, जैसे कि चरक, सुश्रुत आदि संहिताओं में वर्गीकरण देखे जाते हैं।
2. शल्य–तन्त्र– अथर्ववेद में शरीर से पृथक् हुयी अस्थियों को रथ के विभिन्न अंगों के समान जोड़कर रथ की ही तरह मनुष्य को स्वस्थ बना देनेवाला आदेश दिया गया है।[9] दुःख–प्रसव तथा विकृत–प्रसव के लिए योनि–भेदन का वर्णन मिलता है।[10] कष्ट–साध्य लोहिनी और कृष्णा नामक अपची को किसी किसी विशेष शर से भेदन करने के लिए उल्लेख प्राप्त होता है।[11] मूत्राघात रोग में शर तथा शलाका आदि द्वारा मूत्र को निकालने या भेदन करने का आदेश दिया गया है।[12] ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों द्वारा नाना चमत्काररूप भैषज्य विषय देखे जाते हैं। जैसे– दासों द्वारा अग्नि और जल में फेंकने पर, पुनः सिर एवं वक्षस्थल के टुकड़े टुकड़े करने पर भी जीवित दीर्घतमा ऋषि को अश्विनी कुमारों ने स्वस्थ कर दिया।[13]
3. शालाक्य–तन्त्र– अथर्ववेद में सम्पूर्ण सिर के रोगों तथा कान के रोगों को दूर करने का आदेश मिलता है।[14] इन मन्त्रों में शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य– सिर के इन तीनों रोगों का नामकरण मिलता है। ये पृथक्–पृथक् रोग प्रतीत होते हैं। कुष्ठ नामक औषधि को शीर्षामय तथा नेत्ररोग नाशक कहा गया है। नेत्र के रोगों के सम्बन्ध में अथर्ववेद में विभिन्न साधनों पर चिकित्सा का वर्णन है। कहीं कहीं जल–चिकित्सा, आजनमणि, तो कहीं जंगिडमणि के प्रयोग से तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं दिव्य सुवर्ण के उपचार मिलते हैं।[15]
4. कौमार–भृत्य– गर्भाधान, गर्भ की पुष्टि, गर्भ की रक्षा, सुख प्रसव एवं जन्मकाल के अमांगलिक क्षणों में हानिकर प्रभाव को दूर करने के लिए अनेक मन्त्र अथर्ववेद में मिलते हैं।[16] अथर्ववेद में कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें औषधि मन्त्र एवं रक्षायन्त्र का प्रयोग निर्दिष्ट है।[17] प्रसव के लिए भी मन्त्रों की बहुलता वहाँ उपलब्ध होती है।[18]
5. भूत–विद्या– गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ग्रहादि के आवेश से दूषित शरीर एवं मन की शान्ति के लिए कुछ कर्म जैसे– दान, पूजा आदि किए जाते हैं, यह भूत विद्या है। इसका आदि स्रोत अथर्ववेद है। चरक, सुश्रुत आदि संहिता ग्रन्थों में पूतना आदि ग्रहों को बाल–रोग का कारण माना गया है। आयुर्वेद ने उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों के कारणों में भूत, प्रेत, पिशाच तथा गन्धर्व को भी एक कारण माना गया है।
6. अगद–तन्त्र– अथर्ववेद में अगद–तन्त्र से सम्बन्धित विषय, जैसे– स्थावर और जंगम, विष, सर्प, वृश्चिक, विषाक्त कीटाणु तथा विषाक्त बाण इत्यादि के विषय में अनेकों मन्त्र मिलते हैं।[19] ऋग्वेद में भी सर्प विष, वृश्चिक विष तथा विषाक्त कीटों से सम्बन्धित मन्त्र पाये जाते हैं।[20] अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति तथा कंद में यदि विष है तो उसे नष्ट करने का आदेश दिया गया है।[21] अथर्ववेद में अनेक विषाक्त सर्पों के नाम उपलब्ध होते हैं। विष को नष्ट करने के लिए कुछ वनस्पतियों से सम्बन्धित मन्त्र भी प्राप्त होते हैं।[22] चरक संहिता में भी चिकित्सा स्थान (23,25) में जल से परिषेचन और अवगाहन बताया है। कौशिक सूत्र में सब प्रकार के विषस्तम्भ के लिए उपाय दिये गए हैं।[23] अथर्ववेद में जप करते हुए जेठी मधुको पीसकर तथा निर्दिष्ट मन्त्र से अभिमन्त्रित कर रोगी को पान कराना चाहिए तथा खेत की वल्मीक मिट्टी को पशु–चर्म में बांध कर कवच की तरह धारण करना चाहिए।
7. रसायन–तन्त्र– जो औषधि रसादि धातुओं में क्षीणता न आने दे तथा व्याधियों को नष्ट कर स्वस्थ रखे, वही रसायन है। अथर्ववेद में जल तथा इसके गुणों की प्रशंसा की गयी है एवं जल को वृद्धावस्था और व्याधि दूर करने तथा अनश्वरता पैदा करने वाला द्रव्य बताया गया है।[24] कुछ मन्त्रों में जल को विभिन्न प्रकार के रोगों की औषधि तथा शारीरिक रोगों को दूर करके शरीर एवं त्वचा को सुस्थिर एवं स्वस्थ बनाने वाला कहा गया है।[25] अथर्ववेद जल को रस मानता है तथा जल से अक्षय बल और प्राण की याचना करता है।[26]
8. वाजीकरण– अथर्ववेद में पुरुषत्व के विकास के लिए अनेक मन्त्रों का उल्लेख मिलता है। कुछ मन्त्रों में अश्व, हस्ती,गर्दभ

और वृषभ सदृश पुरुषत्व शक्ति के अर्जन के लिए प्रार्थना की गयी है।

निष्कर्ष

महाभारत एवं चारणव्यूह में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा गया है, किन्तु उसमें अष्टांग आयुर्वेद की मात्रा कम प्राप्त होती है। दूसरी ओर सर्वाधिक समानता अथर्ववेद से होने के कारण आचार्य सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग एवं वाग्भट्ट ने अथर्ववेद का उपवेद कहा है। आचार्य चरक ने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेद से बताई है एवं पुण्यतम वेद कहा है। इस प्रकार आयुर्वेद की वेद–मूलकता सर्वथा स्पष्ट ही है।

सन्दर्भ

1. सिद्धान्तकौमुदी, धातु सं.– 1045
2. अमरकोष– 2.8.120
3. चरकसंहिता सूत्र– 30.22
4. चरकसंहिता सूत्र– 3.41
5. सुश्रुतसंहिता सूत्र– 1.6
6. अष्टांगहृदय सूत्र– 8.9
7. चरकसंहिता सूत्र– 1.43
8. सभापवि 11.33 पर नीलकंठ की व्याख्या
9. अथर्ववेद– 4.12.7
10. अथर्ववेद– 1.11.1
11. अथर्ववेद– 7.74.1
12. अथर्ववेद– 1.3.1
13. ऋग्वेद– 1.158.4
14. अथर्ववेद– 9.8.1
15. अथर्ववेद– 19.35.3,5.4.10, 5.4.2
16. अथर्ववेद– 5.25.1–3, 6.81.1–3, 6.17.1–4, 1.11.1–6, 6.110. 1–3
17. अथर्ववेद– 1.81.1–3
18. अथर्ववेद– 1.11.1–6
19. अथर्ववेद– 4.6.1–8,4.7.1–6 7.88.1
20. ऋग्वेद– 7.50,1.191
21. अथर्ववेद– 10.4.22
22. अथर्ववेद– 2.27.2
23. कौशिकसूत्र– 29.2.8
24. अथर्ववेद– 3.7.5,6.24.2
25. अथर्ववेद– 3.7.5–7,4.33,6.22–24
26. अथर्ववेद– 3.13.5